International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746, Impact Factor: RJIF 5.34
www.alleducationjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 282-283

सामाजिक समावेशन: चुनौतियाँ एवं समाधान

जग्गू दान रतनू

पीएचडी शोधार्थी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

सारांश

उपर्युक्त अनुच्छेद सामाजिक समावेश के विविध आयामों को कवर करता है। वर्त्तमान भारतीय समाज की स्थिति को कारणों की विवेचना करता है। उत्तरआधुनकितावादी ज़माने में विचारो और मानकों की नई व्याख्या हुई है। जिसके अंतर्गत मानव विकास जैसी संकल्पनाओं ने नए सिरे से राष्ट्रो की समावेशन की परिभाषा व्यापक हो गई है। लोकतान्त्रिक मूल्यों को बढ़ावा देना और विवेकशीलता की कसौटी पर उतरने वाले मानको को विकसित करने की जरूरत है। इस संदर्भ में प्राचीन भारतीय मूल्यों पर गौर करना समीचीन होगा.

मूल शब्द: ***सामाजिक समावेशन, लोकतान्त्रिक, विवेकशीलता***

प्रस्तावना

"मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज के अन्य लोगों के साथ अन्तःक्रिया करता है। जो समाज में नहीं रहता, वह या तो पशु है या देवता।" अरस्तू का यह कथन व्यक्ति की न केवल सामाजिक प्रकृति को दर्शाता है बल्कि व्यक्ति के समाज के साथ पारस्परिक समतापूर्ण व्यवहार की भी अपेक्षा करता है। व्यक्ति परिवार में जन्म लेता है तथा समाज के दायरे में विकसित होता है। व्यक्ति के बेहतर विकास के लिए समाज कुछ नियमों, परम्पराओं व मान्यताओं का निर्धारण करता है। ये नियम व मान्यताएँ उसे विभिन्न सुविधाजनक वर्गों में विभाजित करता है तथा उस खास वर्ग के लिए कुछ "करने योग्य" व "न करने योग्य" कार्यों व सिद्धान्तों का विकास करता है। जिसका पालन कर वह निरन्तर विज्ञानवादी दृष्टिकोण मानववाद व सर्वश्रेष्ठता की ओर जाने को प्रेरित होता है।

समाज में ये नियम व परम्पराएँ जब तक वैज्ञानिकता के साथ विद्यमान होती है, तब तक समाज का विकास होता है। लेकिन जब यही परम्पराएँ पूर्वाग्रहों, मिथ्यातथ्यों, विकृत मानसिकता तथा भेदभावका आवरण लिए होए हैं, तो समाज को अवरुद्ध कर देते हैं। रूसो ने इसे इस तरह व्यक्त किया है कि "व्यक्ति स्वतन्त्र जन्म लेता है, परन्तु वह सर्वत्र बेडियों में जकडा रहता है।"

सामाजिक बेदियों की जकडन बहुत मजबूत होती है। जिससे समाज कठोर वर्गों में विभाजित हो जाता है, जो पारस्परिक अन्तःक्रिया करने में सक्षम होते हैं। ये बन्धन धन, व्यवसाय, वासस्थान, धर्म, मान्यताओं तथा शारीरिक लक्षणों के आधार पर लगाये जाते हैं। जो व्यक्तिवाद के आधार समाप्त कर कभी न समाप्त होने वाली दासता. भेदभाव व उपेक्षित व्यवहार का कारण बनते हैं।

भारतीय समाज में कई ऐसे वर्ग हैं, जो समाज की मुख्यधारा से बाहर हैं, जैसे- महिलायें, दलित, अल्पसंख्यक, गरीब, विकलांग, LGBT समुदाय, वैश्यायें, मैला ढोने वाले व आदिवासी समाज की मुख्यधारा में इनको लाना सामाजिक समावेशन कहलाता है। जिससे समाज में छत्तेनुमा बने वर्ग समाप्त हो सकें तथा हर व्यक्ति अपने विकास की पूर्णता प्राप्त कर सके।

भारतीय समाज एक विविधताओं से पूर्ण समाज है। लेकिन कभी-कभी ये विविधतायें भ्रम पैदा कर देती हैं कि कुछ लोग योग्यता, क्षमता व बुद्धि में अन्य से निम्न हैं। इनके साथ निम्न तरीके का व्यवहार करना चाहिए। ऐसा इसलिए भी होता हैकि समाज के कुछ लोग लाभ व शक्तियों का अधिकतम हिस्सा खुद रखना चाहते हैं। जरूरी है किएक समावेशी समाज को हाशिए पर उपस्थित लोगों के साथ मानवतापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए।

समावेशी विकास व सामाजिक समावेशन एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। जहां समावेशी विकास में लाभों का सभी व अन्तिम व्यक्ति तक वितरण है, वहीं सामाजिक समावेशन समाज के अन्तिम व्यक्ति" तक को समाज में वही दर्जा दिया जाए, जो "प्रथम व्यक्ति" को प्राप्त है। पहला, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास है, तो दूसरा, समाज से जुडा है।

भारत जैसे देश में बहुत से ऐसे वर्ग विद्यमान हैं, जिनके साथ बराबरी का व्यवहार नहीं किया जाता। ऐसा इसलिए नहीं होता है कि वे इस हेतु योग्यता अर्जित नहीं कर पाए हैं, बल्कि इसलिए होता है कि वे जन्म से ही इसके लिए अन्य लोगों के द्वारा अर्थ समझकर विकसित होने का हक छीन लिया है। इन वर्गों को बराबरी का हक मिलना जरूरी है, लेकिन इसमें सबसे बडी बाधा सामाजिक जटिलता, रूढिवादिता व सामाजिक नियमों व घोर धार्मिक बंधनों का पाया जाना, परम्परा से ही उनपर "निर्योग्यताएँ" थोप दी गई हैं। इनका खण्डन करना न केवल जटिल है, बल्कि धर्मविरुद्ध, अनैतिक व दुष्कृत्य माना जाता है।

भारतीय सामाजिक अपवंचन का मुख्य साधन वित्तीय रूप से वंचित

वर्गों को सदियों से वंचित रखना, महिलाओं व शूद्रों को सम्पत्ति रखने का अधिकार ही नहीं दिया गया, दासों का जीवन ही मालिकों की सेवा के नियमित था। वैश्याएँ भोग्या या पतिता ही मानी गईं और उनके सम्पत्ति अर्जन को पाप माना गया। कभी जब धन का अधिकार मिला, तब उनमें कुछ सुधार अवश्य हुआ। इसलिए अब यह चुनौती है कि कैसे अकुशल, दमित व अपवंचित वर्गों का आर्थिक सशक्तीकरण हो।

लोकतन्त्र की स्थापना के साथ "एक व्यक्ति-एक वोट" का प्रारम्भ हुआ। जिससे अपवंचित वर्ग के पास कुछ शक्तियां आईं। लेकिन फिर भी जटिल सामाजिक बाध्यताओं व पूर्व की कृतज्ञताओं के कारण वंचित वर्ग का मतदानीय व्यवहार अपनी इच्छा व जरूरतों की बजाय निर्देशित ही होता है। इसलिए राजनैतिक रूप से सक्षम बनाने की चुनौती है, ताकि वे समानता व मातृत्व जैसे मूल्यों को प्राप्त कर सकें।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है की भारत की चुनोच्यो से निपने के लिए डॉ अंबडेकर के अनुसार सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापन करनी होगी, केवल राजनीतिक लोकतंत्र से समाज में समानता स्थापित नहीं होगी। इस डिश में भारत सर्कार की सकरात्मक कार्यवाही काफी हद सफल हुई। इसके अलावा यूनिवर्सल बेसिक इनकम जैसे विचार पर गहन चर्चा की जरुरत है। उत्तरआधुनिकी ज़माने में विवेकशील और ज्ञान आधारित समाज की दिशा में बढ़ने के लिए उच्च शिक्षा पर सकल घरेलु उत्पाद का दस प्रतिशत खर्च करना होगा तभी समाज की मुख्याधारा में आ पाएंगे। सामाजिक जागरूकता, विवेकशीलता, सामजन्य और सहिष्णुता जैसे मूल्यों को बढ़ावा देना चाहिए। जिससे समजा में व्याप्त तमाम तरह की असमानता को जड़ से ख़त्म होगी और समावेशी विकास की संकल्पना के बहुआयामी उद्देश्यों की पूर्ति हो पायेगी।

उपर्युक्त अनुच्छेद सामाजिक समावेश के विविद आयामों को कवर करता है। वर्त्तमान भारतीय समाज की स्थिति को कारणों की विवेचना करता है। उत्तरआधुनकितावादी ज़माने में विचारो और मानकों की नई व्याख्या हुई है। जिसके अंतर्गत मानव विकास जैसी संकल्पनाओं ने नए सिरे से राष्ट्रो की समावेशन की परिभाषा व्यापक हो गई है। लोकतान्त्रिक मूल्यों को बढ़ावा देना और विवेकशीलता की कसौटी पर उतरने वाले मानको को विकसित करने की जरूत महसुस किये जाने की जरूरत है। इस संदर्भ में प्राचीन भारतीय मूल्यों पर गौर करना समीचीन होगा

References

1. Ambedkar BR. Annihilation of Caste, 1936.
2. Basu DD. Introduction to Indian Constitution, 1960.
3. Bhargav, Acharya. Political Theory: AN Introduction, Pearson Publication, 2008.
4. Roussau Jean Jacqus. The Social Contract, 1762.
5. Jayadayal, Mehta. Politics in India, Oxford Publication, 2011.
6. Chhetri Durga Prasad. Democratic Decentralisation and Social Inclusion in India: Exploring the Linkages, IOSR Journal of Humanities and Social Science, 2013.